International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

संस्कृत शिक्षण : दशा एवं दिशा

डॉ. लता शर्मा

सह आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर

हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति को एक ऐसी संहारी ध्वंसात्मक लोलुप सभ्यता का सामना करना पड़ रहा था जो प्रगति और पश्चिमीकरण के नाम पर भारत की परम्परागत दृष्टि को नष्ट कर रही थी। भारतीय पारम्परिक सांस्कृतिक बोध वैयक्तिक अथवा खण्डभूत स्वायत्तता का बोध नहीं है और न ही यह अतीत के प्रतीकों पर जीता है, जैसा कि पाश्चात्य विचार में है। पश्चिम अखण्ड और निर्बाध समग्रता के विचार से परिचित ही नहीं है। इसलिए व्यक्ति केन्द्रित विचार उस सभ्यता के मूल में है। समग्रता के दृष्टिकोण का अभाव होने के कारण ही पाश्चात्य विचार काल को भी खण्डशः अतीत, वर्तमान और भविष्य के रूप में देखता है और वर्तमान की अपेक्षा अतीत के प्रतीकों को विशेष महत्व देता है यही उसका परम्परागत बोध है। किन्तु भारतीय मनीषा समग्रता के विचार से अबाध परिचित है। यह बोध प्रत्येक व्यक्ति के मानस, विचार, जीवन शैली, समाज, परिवार और आस-पास के वातावरण में युगों से नैसर्गिक परम्परा अथवा सनातन संस्कृति के रूप में प्रवाहमान है। यही कारण है कि हम काल को खण्डशः न देखकर अजस्र प्रवाहमान धारा के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि भारत की संस्कृति, समय बोध और दर्शन करोड़ों लोगों की जीवन-मर्यादा को अनुशासित करते हैं। यह परम्परा बोध न तो इतिहास के प्रतीकों से है, न ही पारिभाषिक राज्य, संगठन और चर्च जैसे धार्मिक प्रतिष्ठानों की संलग्नता से अपितु स्वतः स्फूर्त भावना से है जो पारिभाषिक न होते हुए भी संलग्नता और प्रतिबद्धता में बहुत दृढ़ और अखण्डित रहा और असंख्य बाधाओं, गुलामियों को एक दीर्घ कालावधि तक झेलते रहने के बावजूद भारतीयों के 'अन्तर्मन में यह संस्कृति बोध , परम्परा बोध स्पन्दित होता रहा ।

यह भी सत्य है कि अंग्रेजी शासन के समय हमारी इस जीवन-धारा में हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। हमें निरन्तर यह सिखाया गया कि हम बहुत ही पुरानी मान्यताओं और मर्यादाओं पर आधारित संस्कृति को ढो रहे हैं। हमारे ज्ञानानन वेद, पुराण, शास्त्रों और दर्शन का पुनर्विवेचन किया गया। इस हस्तक्षेप का दुष्प्रभाव केवल इतना ही नहीं था कि हम राजनैतिक और आर्थिक रूप से गुलाम हो गए, अपितु हमारी चेतना पर, समग्रता के विचार पर पहली बार ऐसी चोटें पड़ी कि काल की अजस्र प्रवाहमान धारा अतीत, वर्तमान और भविष्य के कटघरों में विभाजित हो गई । विचार की परम्परा की, संस्कृति की अखण्डता का सहज प्रवाह खण्ड- खण्ड होने लगा। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय व्यक्ति क्रमशः अपनी उस समूची थाती से अलग होने लगा, जिसके बीच वह जीता था , मरता था , सांस लेता था, जीवन का अर्थ ढूँढता था और संलग्नता का वह सर्वव्यापी बोध, वह समग्र विचार खोने लगा जो मनुष्य को अपने परिवेश, अपनी संस्कृति से जोड़ता है।

हमारी पहचान हमारे साहित्य को सायास पुनर्विश्लेषित करते हुए उसकी व्यर्थता सिद्ध की गई। वेदों को 'गडरिये का गीत' और पुराणों को 'कथाकारों का भ्रमजाल कहकर हमारी पहचान को दूषित करने का प्रयास हुआ और 'दोयम दर्जे के अनपढ़ नागरिकों के रूप में इस महान् परम्परा के वाहक भारतीयों की नई पहचान बनी। यहाँ तक कि इन पर तीसरी दुनिया के लोग' के रूप में राजनैतिक पहचान भी चिपका दी गई। कालान्तर में इस सायास थोपी गई पहचान से विद्रोह करते हुए एक और विचारधारा निकली जिसने पुरातन को अत्यधिक महान और उच्चतम आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हुए हमारे प्राचीन साहित्य की व्याख्याएँ करना आरम्भ किया। वस्तुतः व्याख्या भी नहीं, केवल उसे कहना प्रारम्भ किया और सायास दमित, शोषित, हीनभावना ग्रस्त समाज में जबरदस्ती आत्मगौरव का भाव उद्दीप्त करना प्रारम्भ किया। निस्संदेह यह सब बिना शास्त्रीय अध्ययन के करने का प्रयास किया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय मानस एक अजीब सी उलझन में फँस गया। संस्कृति से किंचित् परम्पराओं के रूप में जुड़ा हुआ, लेकिन भाषायी और तकनीकि रूप से स्वयं को अनपढ़ महसूस करता हुआ बाहर से थोपी गई आत्मगौरव और आत्मश्लाघा को केवल तोते की तरह रटता हुआ व्यक्ति। आज भी यही भारतीय आपको प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा।

यह हुआ वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन , समस्या का विहंगावलोकन। अब हम मूल विषय की ओर अग्रसर होते हैं। इस सारी साहित्यिक व सांस्कृतिक रूप से दिग्भ्रमित मनःस्थिति का मूल कारण रहा हमारा हमारे साहित्य से अलगाव। गुरुकुलों के माध्यम से जीदन में अजस्र स्रोत के रूप में बहने वाली संस्कृत भाषा और साहित्य, मैकाले

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

की नवीन शिक्षण संस्थाओं में अंग्रेजी भाषा के ज्ञान और प्रचार-प्रसार के नीचे कुचल गई । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी जो शिक्षा नीति अपनाई गई, वह कमोबेश मैकाले की ही शिक्षा थी क्योंकि तीसरी दुनिया के विकासशील देशों को विकसित दुनिया की श्रेणी में पहुँचना था। विज्ञान और तकनीक केवल अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध थी अत भारतीयता की पहचान कायम रखने के लिए संस्कृत भाषा को तीसरी भाषा के रूप में पाठ्यक्रम में समाहित कर कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली गयी। गुरुकुलों को जीवित करने के लिए संस्कृत माध्यम से शिक्षा हेतु संस्थान खोल दिए गए। जहाँ संस्कृत तो पढ़ाई जाती है, किन्तु अन्य आधुनिक विषयों को तीसरे विषय जैसी हैसियत प्राप्त है। एक और परम्परा वेद विद्यालय के रूप में रखी गयी है। यहाँ स्थिति और भी अधिक दयनीय है। यहाँ वेद को पारम्परिक रूप से पढ़ाया जाता है और यह भी केवल यजुर्वेद की ही पाठ-परम्परा अब उपलब्ध रह गयी है। अन्य वेदों की पाठविधि प्रायः विलुप्त हो चुकी है। आधुनिक तकनीकि ज्ञान और विषय यहाँ भी केवल प्राथमिक स्तर पर ही शामिल किए जाते हैं और बहुत दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि इन वेद विद्यालयों से अधिकांशतः कर्मकाण्डी पुरोहित वर्ग ही उत्पन्न किया जा रहा है। समग्रत्ता की पोषक भारतीय मनीषा, भारतीय संस्कृति, भारतीय साहित्य और भारतीय शिक्षा खण्ड-खण्ड मात्र रह गई। यद्यपि यह दिग्भ्रम सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली के ही संदर्भ में है, किन्तु संस्कृत भाषा के अध्ययन अध्यापन की स्थिति अत्यधिक प्रभावित हुई। वस्तुतः जो भाषा हमें हमारा गौरव पुनः प्रदान करने में सक्षम थी उसकी स्थिति उतनी ही दुर्भाग्यपूर्ण हो गई। उच्चस्तरीय समीक्षा बैठकों के साथ पुरातन प्रेमी अति उत्साही विद्वान् सभी ने अपने-अपने विचार रखने शुरू किए। कोई उसे पुनः बोलचाल की भाषा तक पहुँचाने की आवश्यकता सिद्ध करता है तो कोई उसे मृत भाषा कह देता है, किंतु कोई भी दुराग्रह अथवा स्वाग्रह वास्तविक रूप में उस भाषा में निबद्ध अकूत ज्ञान को भारतीय शिक्षा प्रणाली के साथ सुसमायोजित करने के प्रति प्रयत्नशील नहीं है।

इस संदर्भ में एक सुनिश्चित कार्य-योजना बनाकर क्रियान्वित करने की महती आवश्यकता है। संस्कृत भाषा में निबद्ध इस ज्ञान को भारतीय शिक्षण परम्परा में गुम्फित करने हेतु तीन स्तरों पर कार्य किया जाना अपेक्षित है। प्रथमतः विद्यालय स्तर पर। संस्कृत का वह साहित्य जो जीवन-चर्या को परिमार्जित कर, व्यक्तित्व को सुगठित करते हुए स्वस्थ सौहार्दपूर्ण परिवार, समाज, देश और राष्ट्र के निर्माण हेतु आवश्यक मूलभूत ईकाई व्यक्ति का निर्माण करने में सक्षम है, उसे प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा का अंग बनाया जाए। यह समायोजन संस्कृत भाषा में न होकर विभिन्न भाषाओं में अनुदित होकर मूल सन्दर्भ के परिचय के साथ पाठ्यक्रम में समायोजित होना चाहिए। हम अंग्रेजी विषय में अंग्रेजी विद्वानों का साहित्य पढ़ाते हैं, वहाँ भी अंग्रेजी में अनुदित संस्कृत साहित्य एवं अंग्रेजी में लिखने वाले भारतीय लेखकों की रचनाओं को अंग्रेजी रचनाकारों के साथ मिलाकर पाठ्यक्रम में समायोजित करना चाहिए। साथ ही विभिन्न विषयों में पुरातन ज्ञानको भारतीय विज्ञान के रूप में पाठ्यक्रम का अंग बनाया जाना चाहिए। यद्यपि इतिहास और सामाजिक ज्ञान में कुछ पाठ एतदर्थ समायोजित है किन्तु यह बहुत कम और सतही है। अन्य विषयों में भी इसका विस्तार किया जाना चाहिए।

इसकी महती आवश्यकता इसलिए भी है कि हम अभिभावक के रूप में यह शिकायत करते हैं कि आज की युवा पीढ़ी मूल्य-विहीन अर्थोत्पादक मशीन जैसी है. जो अपने उत्तरदायित्वों को न पहचानने वाली, बुजुर्गों के प्रति आदर और प्रेम से रहित, संस्कार विहीन व स्वार्थी होती जा रही है। किन्तु सत्य है कि किसी भी विद्यालय में हिन्दी में राम की पूरी कथा भी शायद ही कहीं पढ़ाई जाती हो। महाभारत के तो एकाध अंश ही कहीं पढ़ाए जाते होंगे। जो काव्य जो चरित्र हमारे आदर्श हैं, उनका ही ज्ञान हमारी आज की पीढी को नहीं दिया जाता। पुनश्च एकल परिवारों ने दादी-नानी की कहानियों के माध्यम से भी इन आदर्शों का संस्कार छीन लिया। ऐसे में युवा पीढ़ी की संस्कारहीनता के लिए हम स्वयं दोषी हैं। हमारी शिक्षा-व्यवस्था और अंधी पश्चिमी विकास की वह दौड़ दोषी है, जो हम ही अपने भविष्य को दे रहे हैं। अतः शिक्षा को संस्कार से, चरित्र-निमार्ण से, नैतिक मूल्यों से. सद्भावना और राष्ट्रप्रेम जैसे विषयों से जोड़ने के लिए संस्कृत भाषा में निबद्ध इस साहित्य का पाठ्यक्रम के प्रत्येक स्तर पर समायोजन किया जाना चाहिए, ताकि हमें हमारी संस्कृति की सुगन्ध में पालित, पोषित युवा पीढ़ी मिले। जो थोपी गई आत्म-श्लाघा को तोते की तरह रटने वाली अथवा उस पर हीनता के बोध से युक्त न होकर यथार्थतः आत्मगौरव का अनुभव करने वाली हो इस प्रकार यह समायोजन साहित्य एवं संस्कृति के सार तत्व को रुचिकर रूप में छात्रों को पढ़ाया जाए जो उनके व्यक्तित्व को समुचित दिशा प्रदान करने में सक्षम होगा।

द्वितीय महाविद्यालय स्तर पर संस्कृत का भाषा के रूप में अध्ययन। यहाँ यह अध्ययन भाषा की दृष्टि से सांगोपांग होना चाहिए जिसमें व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्यशास्त्र, सम्प्रदायों व भाषा के इतिहास आदि को भाषा की दृष्टि से पढ़ाया जाए, जो कि वर्तमान में भी प्रचलित है। यह ध्यातव्य है कि संस्कृत शिक्षण की जो दूसरी

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

परम्परा संस्कृत माध्यम से प्रचलित है उसे भी मूल विद्यालयी और महाविद्यालयी शिक्षा के साथ समाहित किया जाना चाहिए। जिससे कि उसमें अध्ययनरत विद्यार्थियों को सर्वांगीण शिक्षण पद्धति का लाभ मिल सके। संस्कृत माध्यम से प्राप्त शिक्षा प्रणाली में अध्येताओं की निरन्तर गिरती संख्या इस बात का प्रमाण है कि वह शिक्षा उन्हें अर्थोपार्जन में सक्षम तो नहीं ही बना पा रही । सम्यक् अध्ययन के अभाव में समाज में भी स्वयं को प्रतिष्ठित नहीं कर पा रहे हैं। अतः उन्हें मूल शिक्षा प्रणाली के साथ जोड़ा जाए अथवा संस्कृत माध्यम से, अन्य विषयों को भी उसी अनुपात में साथ में जोड़ा जाए ताकि समकक्षता बनी रहे। साथ ही रोजगार के भी समान अवसर अध्येताओं को उपलब्ध हो सकें। भाषा के रूप में संस्कृत साहित्य का यह अध्ययन भाषायी रूप को अक्षुण्ण रखने में सक्षम होगा।

तृतीय एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षण स्तर है शोध का। संस्कृत भाषा में ज्ञान का अकूत भण्डार है यह कथन अथवा किसी भी नए अनुसंधान को संस्कृत साहित्य से सम्बद्ध करने की परम्परा के मूल में यही तथ्य है कि वास्तव में पुरातन साहित्य में समस्त आधुनिक ज्ञान व शोध विद्यमान हैं, किन्तु हमें वह ज्ञात नहीं हैं। एतदर्थ एक अलग संस्थान और विभाग प्रशासनिक स्तर पर स्थापित करने की महती आवश्यकता है, जिसमें ज्ञान-विज्ञान की समस्त शाखाओं, कला, वाणिज्य, विज्ञान, प्रबंध, चिकित्सा विज्ञान, आहार विज्ञान, पर्यावरण, वास्तु, स्थापत्य, भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, गणित, ज्योतिष और जितनी भी अन्यान्य शाखा प्रशाखा हो सकती हैं उनके विषय में शोध को बढ़ाया जाए।

एतदर्थ अध्येता को दोनों ही विज्ञान और संस्कृत भाषा का समानान्तर ज्ञान दिया जाए। यथा इसरो और डीआरडीओ जैसे संस्थान वैज्ञानिक शोध करवाते हैं उनके साथ संस्कृत के अध्ययन को जोड़कर ऐसे भाषाविद् वैज्ञानिक बनाए जाएँ जो संस्कृत में निबद्ध विज्ञान को वर्तमान विज्ञान के साथ जोड़कर उसके आगे का अनुसंधान कर सकें।

प्राचीन वैदिक विज्ञान सूत्रात्मक शैली में निबद्ध है, प्रहेलिकाओं के रूप में उपस्थित है, जिसे वस्तुतः डीकोड करने की आवश्यकता है, किंतु ऐसे संस्कृतज्ञों का अभाव है जो वैज्ञानिक हों और ऐसे वैज्ञानिक तो सर्वथा अनुपलब्ध हैं जो संस्कृतज्ञ हों। यदि ये दोनों ज्ञान एक साथ एक स्थान पर हो सकें तो असंख्य ज्ञान-विज्ञान के नवीन कोश उद्घाटित हो सकेंगे। निस्सन्देह हमारी ज्ञान-सम्पदा का विदेशी विश्वविद्यालयों में शोध और उपयोग हो रहा है और विदेश से लौटा हुआ ज्ञान हमें स्वीकार हो जाता है किन्तु हम स्वयं शोध की दिशा में किंचित् भी नहीं बढ़ पाते। आज वैसे भी Brain Drain हमारी सबसे बड़ी समस्या है। हमारी प्रतिभाएँ जिन पर देश के द्वारा बहुत सा धन व्यय किया जाता है. विदेशों में चला जाता है और हमारी प्रतिमाएँ हमारी दृष्टि से शोध न करके विदेशी दृष्टि से शोध करती हैं। निश्चित ही प्रतिभा हमारी है, ज्ञान हमारा है. किन्तु उसका लाभ भारत को नहीं मिल रहा। इसको रोकने और सम्पूर्ण लाभ उपार्जित करने का एकमात्र साधन यही है कि हम हमारे शोध और अनुसंधान को अनुकूल अवसर, सुविधा और संसाधन प्रदान करें, ताकि वह उच्च स्तरीय भी हो और मौलिक भी (मौलिक का रूढ अर्थ है सर्वथा नवीन और शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ हैः- मूल से जुड़ा हुआ) यह कार्य निश्चित रूप से हमारी पहचान को हमसे सम्बद्ध करेगा।

उल्लेखनीय है कि संस्कृत भाषा का यह प्रवाह विगत 5000 हजार वर्षों से हमारे साथ-साथ साथ निरन्तर प्रवाहमान है। इतनी दीर्घ कालावधि तक केवल वही जीवित रहता है जिसके पास वह संजीवनी हो जो उसे पुनः युवा करने में सक्षम हो। संस्कृत भाषा के साहित्य में यह पुनर्नवा शक्ति आदिकाल से रही है। यही कारण है कि जब-जब संस्कृति की लौ मद्धम होती लगी हमने इसके अंशों को पुनरुद्घाटित किया और संजीवनी पाई। आज की आवश्यकता केवल इस साहित्य के पुनः आलोडन मात्र की है। एक दृष्टि जो इसकी प्रासंगिकता और समसामयिकता का अनुसंधान कर सके। इसमें यह संजीवनी उपस्थित है जो उसे सार्वकालिक, सार्वभौमिक पद पर आसीन करती है। यही अन्तर्दृष्टि परम्परागत संस्कृति की सबसे अधिक मूल्यवान निधि होती है। यह हमारा सौभाग्य है कि इतिहास की अनेक विपदाओं और विसंगतियों के बावजूद भारतीय संस्कृति में वे उपादान और प्रतीक, मूल्य और मर्यादा विद्यमान हैं, जिनकी ओट में एक विशिष्ट जीवन पद्धति की मशाल जलती रहती है। केवल यही प्रयत्न करणीय है कि इस मशाल को हम निरन्तर प्रज्ज्वलित रखें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास - आचार्य बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान
2 - संस्कृत शास्त्रों का इतिहास - आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

3 – शैक्षिक चिन्तनम् – डॉ डम्बरुधरपति, रचना प्रकाशन, जयपुर
4 – संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर,लोकभारती प्रकाशन
5 -संस्कृत शिक्षण सरणी – आचार्य राम शास्त्री,परिमल बुक्स
6 – संस्कृत शिक्षण पद्धति – पं सीताराम चतुर्वेदी,नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स,चौक बनारस
7 – भारत की संस्कृति साधना – रामजी उपाध्याय
शैक्षिक मन्थन- पत्रिका
8 – भारतीय पाठालोचन की भूमिका – डॉ एस एम कात्रे, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
9 - Language; It's structure and use- Edward Fiegan, Atlantic publishers and distributors